

रावी लिखता है "एक समाज"— मनोवैज्ञानिक अध्ययन

1 रवीन्द्र कुमार, 2 डॉ० विनोद कुमार

1 अनुसन्धित्सु— कला एवं भाषा विभाग, लवली प्रोफैशनल युनिवर्सिटी, फगवाड़ा, पंजाब, भारत।

2 निरीक्षक कला एवं भाषा विभाग, लवली प्रोफैशनल युनिवर्सिटी, फगवाड़ा, पंजाब, भारत।

सारांश

मनुष्य का अकेला रहना असंभव है। समाज मानवीय जीवन का महत्वपूर्ण एवं लाजमी भाग है। इसकी वजह से ही वह अपने जीवन एवं सभ्यता का विकास करता है। बदलते समयानुसार इसमें भी बदलाव वांछनीय है, जिसके अनुसार मनुष्य के विचारों तथा व्यवहार में भी बदलाव होना लाजमी है। सामाजिक परिस्थितियों के अनुरूप व्यक्ति समाज में रहते हुए विभिन्न प्रकार के सामाजिक रोल अदा करता है ताकि वह समाज में अपना अस्तित्व बरकरार रख सके तथा अपनी सभ्यता और संस्कृति की रक्षा कर सके। अपने अस्तित्व के साथ-साथ यह भावी पीढ़ी के समृद्ध एवं विकासात्मक जीवन हेतु भी अत्यावश्यक है। विकास के नाम पर अपनी ही संस्कृति को कुचलना कदापि मानवीय हित में नहीं। पदार्थवादी सोच में लिप्त मौजूदा पीढ़ी को इस बारे में सोचना अत्यावश्यक है।

मूलशब्द: समाज, संस्कृति, सभ्यता, मानसिकता, आधुनिकता, भाषा, पुरातनता, रूढ़ियुक्तियाँ, सामाजिक रोल, उत्तरदायित्व, धर्म, सामाजिक मूल्य।

प्रस्तावना

समस्त संसार में भाषाओं एवं क्षेत्रीय प्रभाव की विभिन्नता के कारण लोगों के रहन-सहन में विभिन्नता मौजूद है। इन्हीं विभिन्नताओं तथा मानवीय पदार्थवादी सोच के कारण ही पुरातन काल से विभिन्न सभ्यताओं का विकास एवं पतन होता आया है। नवीन सभ्यताएं पुरातन सभ्यताओं के कुछ न कुछ सीखती आ रहीं हैं, हालांकि बदलाव की गुंजाइश में बढ़ोतरी रही है फिर भी समाज, संस्कृति तथा सभ्यताओं के आपसी रिश्तों में घनिष्ठता रही है। 'रावी लिखता है' उपन्यास में लेखक ने एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक के सफर में आए बदलाव तथा क्षेत्रीय प्रभाव के कारण एक संस्कृति का दूसरी संस्कृति के टकराव से उत्पन्न हुए विवादों को बाखूबी प्रदर्शित किया है। सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों के बदलाव द्वारा उत्पन्न हुई पारिवारिक समस्याओं का भी स्टीक विवरण यहाँ प्रस्तुत किया गया है। पुराने एवं नई पीढ़ी के आपसी विचारों की उलझनों तथा कड़वाहटों का विचित्र वर्णन दृष्टव्य है। भारतीय तथा विदेशी सभ्यताओं में पले-बढ़े मनुष्यों के आपसी विवादों का जिन्दादिली से वर्णन के साथ-साथ व्यस्कावस्था तथा वृद्धावस्था की मानसिकता के टकराव का भी वर्णन विख्यात है; क्योंकि उम्र के इन दोनों पड़ावों में कम से कम तीस-पैंतीस वर्षों का अंतर आना स्वाभाविक है, जिस कारण बच्चों और उनके पालकों में जीवन के विभिन्न पड़ावों पर तकरार की गुंजाइश की सम्भावना निहित है।

लेखक ने पिता एवं बेटियों के संवाद के माध्यम से भाषा, पुरातन एवं नवीन रीति-रिवाजों, दिनचर्या के काम करने के तरीकों इत्यादि पर बदलाव की मोहर लगाते हुए उनके आपसी विचारधाराओं के टकराव का विवधता भरपूर सूक्ष्म विवरण पेश किया है "डैडी जब संस्कृत का कोई कथन बोलते तो हम हँसते थे। संस्कृत क्या, हिन्दी का ही कोई मुश्किल-सा शब्द सुनकर हँसी आ जाती थी। हम चाहते थे, वे हमेशा अंग्रेजी बोला करें। यह अलग बात है कि हमें उनकी अंग्रेजी भी पसन्द नहीं थी। "ही वाज माई फादर।" यह भी कोई अंग्रेजी है। हम उन्हें सिखाते, "वाज नहीं डैडी, वाज बोला कीजिए। और फादर नहीं फादर। 'आर' साइलेंट होता है।" भाषा के संबंध में विभिन्न विद्वानों के विभिन्न विचार रहें हैं। किन्तु सभी इसे प्रगति का मूल मन्त्र ही मानते हैं। दिनकर जी कहते हैं कि

"भारत कोई नया देश नहीं है। जिस भाषा में उसकी संस्कृति का विकास हुआ है, वह संसार की प्रचीनतम भाषा है।"²

लेखक ने यहाँ दो पीढ़ियों के व्यवहार के अन्तराल को बड़ी ही संजीदगी से प्रस्तुत किया है। बदलते समाज की परिस्थितियों को, उनके टकराव को, उनमें सुधार की सम्भावनाओं को अत्यन्त सूक्ष्मता से प्रदर्शित किया है और यथासम्भव समकालीन समाज की स्थिति भी बनी ही इस प्रकार की है क्योंकि पदार्थवादी सोच ने मानवीय मूल्यों को एक प्रकार से ध्वंस ही कर दिया है। जिससे भारतीय संस्कृति पर विनाश के काले बादलों का साया नज़र आने लगा है। वैसे आधुनिकता ने, वैश्वीकरण ने जहाँ एक तरफ समाज में नये कीर्तिमान स्थापित किये, वहीं दूसरी तरफ मानवीय सोच को संकुचितता से भर दिया, उसे भावनाविहीन कर दिया। समाज में जो एक क्रान्ति पैदा की है उससे अब संस्कृति प्रभावित हो रही है। प्रभावित ही क्या उजड़ने की कगार पर जा पहुँची है। लेखक ने इस उपन्यास में पात्रों के माध्यम से अपनी जिन्दगी में नयापन अपनाते हुए अपने संस्कार, अपने देश की संस्कृति को बचाने हेतु सम्भावनाओं की कोशिश की है तथा बदलाव से उत्पन्न द्वन्द्वों का भी विश्लेषण किया है।

अब्दुल बिस्मिल्लाह आधुनिक युग के प्रगतिशील लेखक हैं किन्तु उन्होंने अपनी रचनाओं में नयेपन के साथ भारतीय संस्कृति को जोड़े रखने की क्वायद को भी बरकरार रखा है। उनकी इस रचना में इस प्रकार के अनेक उदाहरण भरे पड़े हैं जो आगे बढ़ते हुए अपने पीछे सांस्कृतिक मूल्यों की लड़ को पकड़े हुए हैं। "दरअसल हमारे डैडी पूरी तरह 'आधुनिक' नहीं थे। सूट-बूट पहनते थे, पर कभी-कभी। हम लोगों के साथ डाइनिंग टेबल पर खाते थे, पर कभी-कभी बेड पर ही खाना मँगा लेते थे। बिजली चली जाती तो उनके मजे आ जाते। कहते, "जमीन पर चादर बिछा लो और सब लोग यहीं मोमबत्ती जलाकर खाओ।"³

"मेरा अंग्रेजी बोलना और लड़कों की तरह कपड़े पहनना उन्हें पसंद था। हाँ, ब्रेड-बटर का नाश्ता करना उन्हें अच्छा नहीं लगता था। कहते, "अंग्रेजी बोलो, अंग्रेजी ढंग के कपड़े पहनो, छुरी-कांटे से खाओ, मगर बिलकुल अंग्रेज़ न बनो।"³ इस प्रकार के हालात के मद्देनज़र दिनकर जी कहते हैं कि प्रत्येक सभ्यता, प्रत्येक संस्कृति अपने आप में पूर्ण होती है। उसके सभी अंश, उसके सभी पहलू

एक दूसरे पर अवलंबित और सबके सब किसी एक केन्द्र से संलग्न होते हैं।⁴ मनुष्य को बिना सोचे समझे किसी भी विचारधारा के पीछे संलग्न नहीं होना चाहिए खासकर तब तो बिल्कुल भी नहीं जब हम उसके परिणाम के बारे में अनभिज्ञ हों।

प्रत्यक्ष विहीन बातों को पूर्णतः विश्वास के साथ ग्रहण करना तथा उसे बढ़ावा देना भारतीय लोगों की पुरातन रीति रही है। समाज मनोविज्ञान में यह रूढ़ियुक्तियों के नाम से विख्यात हैं। लिपमैन कहते हैं कि “रूढ़ियुक्ति से तात्पर्य विचारों एवं मनोवृत्तियों के उस संयुक्त रूप से होता है जिसके आधार पर हम किसी वस्तु, व्यक्ति, राष्ट्र आदि के बारे में एक ऐसा दृढ़ एवं स्थायी प्रतिमा बना लेते हैं जो गलत तथ्यों तथा अतार्किक चिन्तन पर आधारित होता है।⁵ आधुनिकता की बहुलता के कारण इनमें कुछ कमी पाई गई है अन्यथा वृद्ध लोग तो इनमें आज भी लिप्त हैं। लेखक ने इस उपन्यास के माध्यम से समाज की पुरातनता के कुछ पहलुओं को समय के साथ स्वयं में बदलाव न लाने वाले लोगों के जरीए बड़ी सटीकता से प्रस्तुत किया है।

“बच्चा जुमेरात के दिन पैदा हुआ था। लोगों का मानना था कि, जो बच्चा जुमेरात के दिन पैदा होता है, वह ज्यादा दिनों तक जिन्दा नहीं रहता। बच्चा अरबी महीने की अठारह तारीख को पैदा हुआ था।

उत्तर भारत के मुसलमान अरबी महीनों के तीन, तेरह, तेईस और आठ, अठारह, अट्ठाईस तारीखों को नहुश यानी अशुभ मानते थे।⁶ इस प्रकार की विभिन्न उदाहरणें समाज के विकास को विचलित कर रही थी जो समयानुसार बदलाव की ओर अग्रसर है और इस प्रकार की रचनाएँ पुरातनता को आधुनिकता की ओर मोड़ने में कुछ हद तक तो प्रासंगिक हैं ही तथा भविष्य में भी रहेंगी।

आधुनिकता ने बहुधा पुराने व बेकार आडम्बरों को तोड़ा तो है किन्तु उसके बहाव में भारतीय संस्कृति के कुछ ऐसे अनमोल सांस्कृतिक चेतना के गुण मस्लन खुले दिल से गले मिलना, जी भर कर रोना, खुल कर चिल्लाना, बेझिझक अपनी बात कहना इत्यादि विद्यमान थे जो अब लगभग समाप्त हो चुके हैं। यदि अनायास ही कहीं नजर आते हैं तो आज सभ्य समाज को बोझ लगते हैं। जबकि वह बहुधा आत्मिक संतुष्टि के प्रफुल्लित साधन थे। लेखक ने ऐसे विभिन्न सांस्कृतिक गुणों को भी शायद उसी प्रकार ही महसूस किया है एवं वृद्ध पात्रों के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

“सोचते-सोचते बहन की याद आ गई। बहन को याद करते हुए अर्म्मी कुछ ज़्यादा ही याद आई। जब वे नानी के यहाँ पहुँचती थीं तो किस तरह उनकी बहनें उनसे लिपटकर मिलती थीं। वापसी में किस तरह वे सब रोती थीं। अर्म्मी भी रोती थीं। अगर यहाँ के लोग रोएँ तो? अच्छा-खासा तमाशा हो जाएगा।⁷”

प्रत्येक सामाजिक प्राणी के लिए समाज में अपना अस्तित्व कायम रखने के लिए अपना एक सामाजिक रोल, एक उत्तरदायित्व जिसे उसको बाखूबी निभाना होता है, मिलता है। माता-पिता, भाई-बहन, दोस्त-दुश्मन इत्यादि विभिन्न प्रकार के सामाजिक पात्र होते हैं जो स्वयं की विचारधारा के अनुरूप स्वयं तथा अन्य हेतु व्यवहार व रोल अदा करते हैं। लेखक ने पिता, बेटी, माँ, प्रेमिका इत्यादि द्वारा निभाये गये विभिन्न प्रकार के सामाजिक रोल का अपनी साहित्यिक सोच एवं सामाजिक परिस्थितियों के ध्यानार्थ बाखूबी वर्णन किया है।

“मेरी छोटी बहन तो शलवार कमीज पहन लेती थी, पर मैं नहीं। इस बात को लेकर अर्म्मी अक्सर डांटती रहतीं उस वक्त डैडी मॉडर्न बन जाते।⁸”

“वल्ली ने आहिस्ते से भाभी के सिर पर हाथ रखा तो जलधारा और वेग से फूट पड़ी। मानो गीली मिट्टी की मेंड़ ही टूट गई हो। “मैं करूँगा। मैं सब करूँगा, भाभी। मैं हूँ न!” वल्ली बोला और खद भी रो पड़ा।⁹”

उपर्युक्त संवादों व व्यवहारों द्वारा ज्ञातव्य है कि लेखक ने सभी प्रकार के सामाजिक रोल को विभिन्न पात्रों के माध्यम से यहाँ प्रस्तुत किया है। जो पाठकों के लिए समाज में अपना उत्तरदायित्व निभाने हेतु कुछ हद तक प्रेरणा के स्रोत के रूप में प्रस्तुत है। इस बात से कोई भी अनभिज्ञ नहीं है कि समाज में प्रत्येक प्राणी के हिस्से विभिन्न प्रकार के उत्तरदायित्व होते हैं। जिनको निभाना उसकी जिम्मेदारी बनती है। जब हम इन सभी से परहेज करते हैं तो स्वयं तो दुख पाते ही हैं, दूसरों को भी दुखी करते हैं। प्रसिद्ध समाज शास्त्री टॉलस्टॉय कहते हैं कि “मानव जाति के वर्तमान दुखों का कारण है उन सनातन नियमों का उल्लंघन।¹⁰ हमें अपनी संस्कृति के दायरे में ही रहकर अपना उत्तरदायित्व निभाना चाहिए। इन से हमारी विमुखता ही हमारे समाज, हमारी सभ्यता एवं हमारे संस्कारों के पतन का कारण बनती है।

धर्म समाज का एक विशिष्ट पहलू है। इसे समाज का सर्वस्व कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी। लेखक ने धर्म के सम्बन्ध में भी इस उपन्यास में मौजूद पात्रों के माध्यम से कट्टरता को बाखूबी दिखाया है। चूँकि लेखक का सम्बन्ध इस्लाम धर्म से है और उनका बहुधा सामाजिक रहन सहन भी अपने ही समुदाय के लोगों से है तो उनके माध्यम से उनकी रचनाओं के पात्रों में भी वही झलक देखने को मिलती है।

“उन्होंने सुन रखा था कि शिया लोग जब किसी सुन्नी को खाना खिलाते हैं तो खाने की चीजों में अपना थूक मिला देते हैं। पानी तक गिलास में थूककर देते हैं। शियों के थूकमिले पुलाव से अच्छा अपने घर का सूखा भात।¹¹” प्रस्तुत दृष्टांत से मुस्लिम समुदायों की कट्टरता एवं आपसी मतभेदों की झलक साक्षात् दृष्टव्य है।

धर्म के सम्बन्ध में विभिन्न भ्रांतियाँ होने के कारण समाज में विकृतियाँ पैदा हो जाती है। अनपढ़ता तो इसमें और भी इजाफा करती है। प्रसिद्ध समाज शास्त्री टॉलस्टॉय कहते हैं कि “धर्म के मूलभूत तत्व सनातन हैं और समस्त मानव जाति ही नहीं प्रमात्मा की बनाई समस्त सजीव निर्जीव सृष्टि के लिए भी वे एक हैं। जो भेद हमें दिखाई देता है वह तफसीलों का है जो देश, काल आदि के साथ-साथ बदलती रहती है।¹² जैसे भाषा को सही तरीके से बोलने, पढ़ने व लिखने हेतु व्याकरण की जरूरत पड़ती है, उसी प्रकार समाज में समरसता के साथ संतुलित जीवन जीने हेतु धर्म की जरूरत पड़ती है। धर्म तो एक प्रकार से सामाजिक नियमों का वह सुसज्जित कायदा है जो हमें सही ढंग से जीना सिखाता है। किन्तु अनपढ़ता, अज्ञानता, संकुचित सोच, पदार्थवाद व रूढ़िवादिता ने तो इसकी परिभाषा में ही बदलाव ला दिया।

जैसा कि ज्ञातव्य है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह अपने समुदाय में, अपने भाईचारे में ही अपना जीवन यापन कर सकता है। असामाजिक वातावरण में वह अपनी रोज़ाना जीवन की जरूरतों की पूर्ति नहीं कर सकता। लेखक ने अपनी इस रचना में ऐसे विभिन्न दृश्यों के द्वारा सामाजिक वातावरण को बेहतरीन तरीके से प्रस्तुत किया है।

“मगर कैसी गृहस्थी! बिना औरत के भी कहीं कोई गृहस्थी जमती है! बिन घरनी घर भूत का डेरा। लोग कहते, “वल्ली, कहो तो कोई लड़की देखें।¹³”

लेखक ने मानव को सामाजिक रुतबे के उत्तरदायित्व के अनुसार उसके प्रत्येक पहलु का विशेष वर्णन अपनी इस रचना में किया है। जिस आधार पर यह माना जा सकता है। कि मानव का भाषा, समाज, धर्म, सभ्यता तथा अपने निर्धारित किये उत्तरदायित्व के प्रति घनिष्ठ रिश्ता है। यदि इन सभी में से किसी एक भी हिस्से को हटाने का प्रयत्न करते हैं तो पतन के कारण के भागीदार बनते हैं। अरूण कुमार कहते हैं कि “प्रत्येक व्यक्ति का एक समाज एवं संस्कृति होता है। वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए समाज में भिन्न-भिन्न तरह का व्यवहार करता है। परंतु समाज

सदस्यों को मनमाने ढंग से व्यवहार करने की स्वतंत्रता नहीं देता है। प्रत्येक समाज में कुछ नियम एवं परम्परा होते हैं। जिनके अनुसार की व्यक्ति को व्यवहार करना होता है।¹⁴ समाज किसी भी प्राणी को मनमानी करने की आज्ञा नहीं देता। मनमानी करने पर दंड का भी प्रावधान होता है।

लेखक की सोच समाज मनोविज्ञान की कसौटी पर स्टीक बैठती नजर आती है। अपनी रचना के पात्रों के माध्यम से वह यही कहते दिखाई देते हैं। "और एक रोज़ शोर हुआ कि वल्ली ने एक भोली-भाली लड़की की जिन्दगी बरबाद कर दी है, इसलिए उसे सज़ा भुगतनी होगी।

ग़ालों का टोला। कातिक की सुबह। गुनगुनी धूप। एक खेत में दो चारपाइयाँ पड़ी थीं, जिन पर सरपंच-सहित गाँव के कुछ मानिन्द लोग बैठे थे। वे गुदनेवाली लड़की और वल्ली के अपराध की सज़ा तजवीज़ रहे थे।"¹⁵

इन सभी प्रकार के व्यवहारों का यही सारांश है कि प्रत्येक प्राणी को सामाजिक नियमों, प्रथाओं एवं परम्पराओं पर खरा उतरना लाज़मी है। नहीं की सूरत में दंडित होता है। प्रत्येक देश की अपनी-अपनी सभ्यता और संस्कृति है। सभी अपने आप में पूर्णतः हैं। यदि हम किसी एक की तुलना दूसरे से करेंगे तो अपने तथा दूसरों के प्रति कटाक्ष का बीज ही बोएंगे। प्रत्येक देश की सभ्यता एवं संस्कृति को बनाने में उस देश के अनगणित लोगों की अथक मेहनत, बलीदान तथा तपस्या का योग होता है। हम चार किताबें पढ़कर उसे चार दिन में बदलने की कोशिश करेंगे तो अभद्र कहलाने का उत्तरदायित्व अपने ही सिर लेंगे। जिस समाज ने, जिस संस्कृति ने हमें सभ्य बनकर उत्तम जीवन जीने की कला सिखाई। हमें उसके प्रति अपना आभार व्यक्त करना चाहिए।

यह सुनिश्चित है कि परिवर्तन प्रकृति का अटल नियम है जिसके तहत संसार में, समाज में, प्राणियों में विभिन्नता मौजूद है और कदाचित् इसमें बढ़ोतरी की गुंजाइश भी बरकरार रहेगी, किन्तु फिर भी कुछ ऐसे सांस्कृतिक मूल्य हैं जो शाश्वत थे और रहेंगे भी। उनके आधार पर ही मानवता, नैतिकता, इन्सानियत, प्राकृतिक सौन्दर्य, सामाजिक समरसता, ऐश्वर्यवाद इत्यादि मूल्य टिके हुए हैं। यदि हम इन मूल्यों के प्रति असहजता प्रकट करेंगे तो मानसिक द्वन्द्व, अशान्ति, अराजकता, पदार्थवाद, अकेलापन की दलदल में धंसते जाएंगे। बदलते समयानुसार बदलाव अत्यावश्यक है; किन्तु सांस्कृतिक मूल्यों को मिटा के नहीं। अपनी विचारधारा को उसके अनुरूप बनाकर।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. अब्दुल बिस्मिल्लाह, रावी लिखता है, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-2010, पृष्ठ-09।
2. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, जनवाणी प्रिन्टर्स एण्ड पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड, कलकत्ता-1956, पृष्ठ-745।
3. अब्दुल बिस्मिल्लाह, रावी लिखता है, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-2010, पृष्ठ-10।
4. अब्दुल बिस्मिल्लाह, रावी लिखता है, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-2010, पृष्ठ-11।
5. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, जनवाणी प्रिन्टर्स एण्ड पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड, कलकत्ता-1956, पृष्ठ-749।
6. अरुण कुमार सिंह, समाज मनोविज्ञान की रूप-रेखा, मोती लाल बनारसी दास, दिल्ली-2013, पृष्ठ-201।
7. अब्दुल बिस्मिल्लाह, रावी लिखता है, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-2010, पृष्ठ-26।

8. अब्दुल बिस्मिल्लाह, रावी लिखता है, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-2010, पृष्ठ-29।
9. अब्दुल बिस्मिल्लाह, रावी लिखता है, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-2010, पृष्ठ-10।
10. अब्दुल बिस्मिल्लाह, रावी लिखता है, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-2010, पृष्ठ-56।
11. माधव प्रसाद मिश्र, सामाजिक कुरीतियाँ, सस्ता साहित्य मंडल, अजमेर-1928, पृष्ठ-04।
12. अब्दुल बिस्मिल्लाह, रावी लिखता है, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-2010, पृष्ठ-119।
13. माधव प्रसाद मिश्र, सामाजिक कुरीतियाँ, सस्ता साहित्य मंडल, अजमेर-1928, पृष्ठ-04।
14. अब्दुल बिस्मिल्लाह, रावी लिखता है, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-2010, पृष्ठ-104।
15. अरुण कुमार सिंह, समाज मनोविज्ञान की रूप-रेखा, मोती लाल बनारसी दास, दिल्ली-2013, पृष्ठ-284।
16. अब्दुल बिस्मिल्लाह, रावी लिखता है, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-2010, पृष्ठ-107।